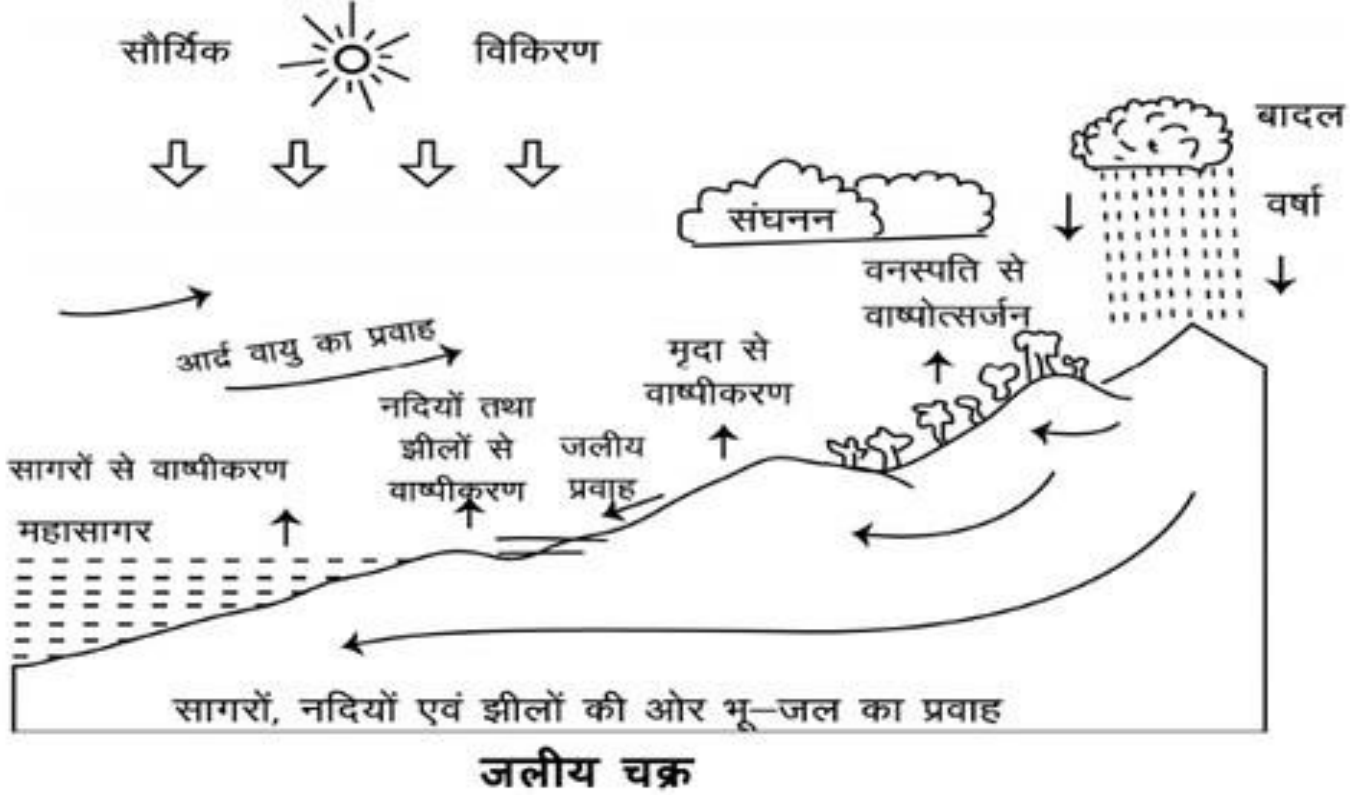


प्राकृतिक संसाधन विकास: वर्तमान स्थिति, बढ़ती जनसंख्या एवं सम्बद्ध समस्याएँ



जलीय

चक्र

3.1

प्रस्तावना

संसाधन एक ऐसी प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा है, जिसका उपयोग हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में करते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय-जीवन की प्रगति, विकास तथा अस्तित्व संसाधनों पर निर्भर करता है। प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन मानव-जीवन के लिये उपयोगी है, किंतु उसका उपयोग उपयुक्त तकनीकी विकास द्वारा ही संभव है। भूमि, सूर्यातप, पवन, जल, वन एवं वन्य प्राणी मानव-जीवन की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान थे। इनका क्रमिक विकास तकनीकी के विकास के साथ ही हुआ। इस प्रकार मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार संसाधनों का विकास कर लिया है। स्पष्ट है कि पृथ्वी पर विद्यमान तत्वों को, जो मानव द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य हो, संसाधन कहते हैं। जिम्मरमैन ने लिखा है कि, संसाधन का अर्थ किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना है, यह उद्देश्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं तथा समाजिक लक्ष्यों की स्तुति करना है। इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु संसाधन की श्रेणी में तभी आती है जब वह निम्नलिखित दशाओं में खरी उतरती है-

- (1) वस्तु का उपयोग संभव हो।
- (2) इसका रूपान्तरण अधिक मूल्यवान तथा उपयोगी वस्तु के रूप में किया जा सके।
- (3) जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की क्षमता हो।
- (4) इन वस्तुओं के दोहन की योग्यता रखने वाला मानव संसाधन उपलब्ध हो।
- (5) संसाधनों के रूप में पोषणीय विकास करने के लिये आवश्यक पूँजी हो।

संसाधन शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Resource' शब्द का पर्याय है जो दो शब्दों Re तथा source से मिलकर बना है जिनका आशय क्रमशः Re = दीर्घ अवधि या पुनः तथा source = साधन या उपाय है। अर्थात् प्रकृति में उपलब्ध वे साधन जिन पर कोई जैविक समुदाय दीर्घ अवधि तक निर्भर रह सके तथा पुनः पूर्ति-या पुनर्निर्माण की क्षमता हो। उदाहरण के लिये प्रकृति में वायु तथा सूर्य का प्रकाश दीर्घ अवधि तक मिलते रहेंगे

जबकि वनस्पति को पुनः उत्पादित किया जा सकता है। स्पष्ट है संसाधन प्रकृति में पाया जाने वाला ऐसा पदार्थ, गुण या तत्व होता है जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता रखता हो। संसाधन दृष्टिगत व अदृश्य दोनों रूपों में पाये जाते हैं। दृश्यमान संसाधनों में जल, भूमि, खनिज, वनस्पति आदि प्रमुख हैं। मानव जीवन, उसका स्वास्थ्य, इच्छा, ज्ञान, सामाजिक सामंजस्य, आर्थिक उन्नति आदि महत्वपूर्ण अदृश्य संसाधन हैं।

3.2 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण
 प्रकृति में विभिन्न प्रकार के संसाधन पाये जाते हैं, जिनके निर्माण का मूल स्रोत प्रकृति है तथा ये सभी मानवीय प्रभाव से नवीन स्वरूप में स्थापित हो जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति मानव के लिये संसाधनों का निर्माण करती है जिनको मानव अपने प्रयासों, इच्छाओं और तकनीकी दक्षता से अपने उपयोग योग्य बनाता है लेकिन इसका वास्तविक भौतिक आधार तो प्रकृति प्रदान करती है। मनुष्य अपने वातावरण से संसाधनों का दोहन करके आर्थिक तंत्र को मजबूत करता है। वह भौतिक वातावरण को परिवर्तित करता रहता है जो उसकी रुचि, कौशल तथा शक्तियों पर निर्भर करता है। लेकिन मानव द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में परिवर्तन की एक सीमा होती है जिसके बाहर जाने पर संसाधनों के सृजन के स्थान पर ह्रास प्रारम्भ हो जाता है।

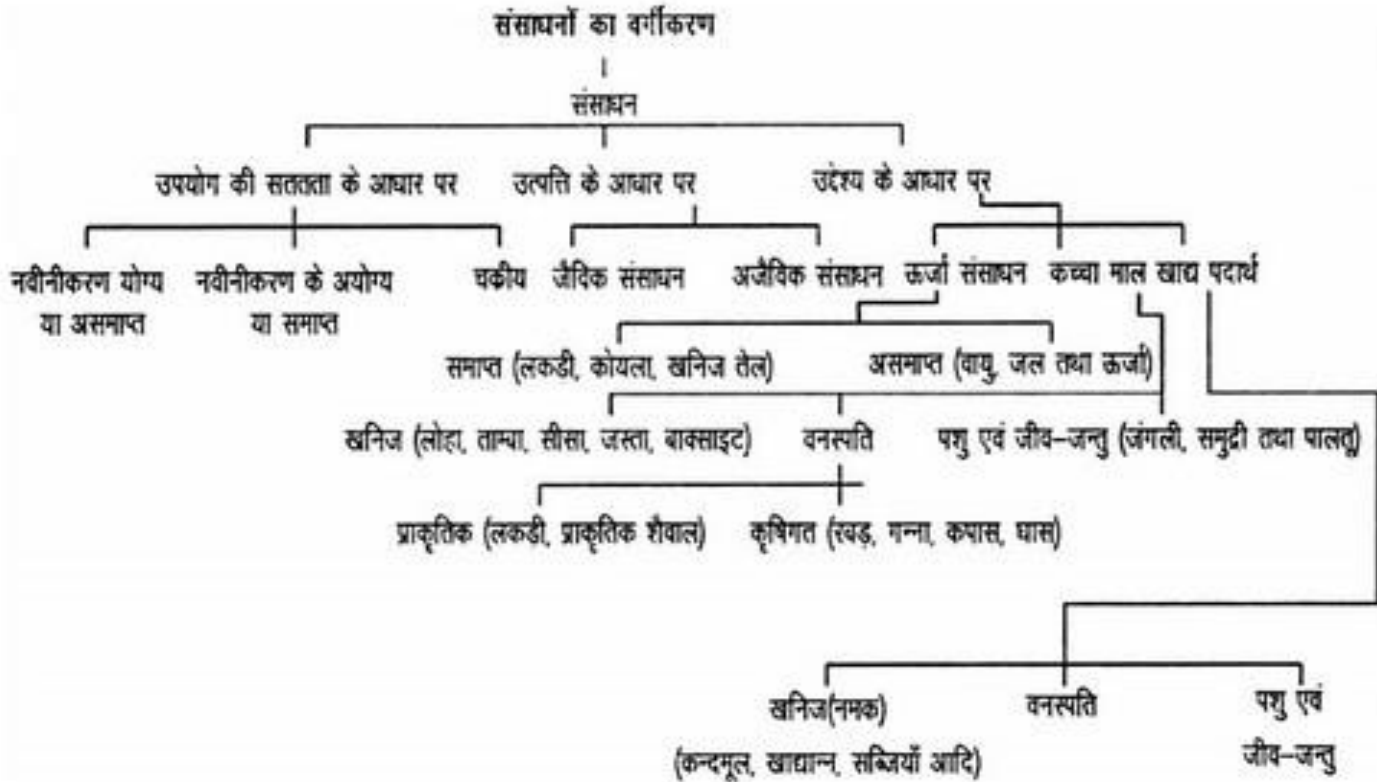
मानव द्वारा प्रकृति में विद्यमान संसाधनों को अपने उपयोग में लेकर उद्देश्य पूर्ति को विकास का आधार माना जाता है। मनुष्य इनका दोहन प्राचीनकाल से करता आ रहा है। धीरे-धीरे इनके तीव्र दोहन से संधतया पोषणीय विकास की आवश्यकता महसूस की जाने लगी तथा वर्तमान समय में इनके आनुपातिक उपयोग हेतु इन्हें वर्गीकृत कर योजना बनाई जाने लगी है। संसाधन अनेक प्रकार के होते हैं जिनके वर्गीकरण के आधार भी भिन्न-भिन्न हैं। स्वामित्व की दृष्टि से संसाधन तीन प्रकार के होते हैं, जो क्रमशः व्यक्तिगत, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय हैं।

धरातल पर उपलब्धता उन्हीं दृष्टि से चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। प्रथम-सर्वत्र उपलब्ध संसाधन जैसे- वायु, द्वितीय-सामान्य रूप से उपलब्ध संसाधन जैसे-कृषि भूमि, मृदा चारागाह भूमि आदि, तृतीय-सीमित उपलब्धता वाले संसाधन जैसे-यूरेनियम, सोना आदि चतुर्थ-संकेन्द्रित संसाधन-जो संसाधन केवल कुछ ही स्थानों पर मिलते हैं। जैसे केरल तट पर थोरियम आदि। उपरोक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि किसी भी संसाधन को किसी वर्ग विशेष में रखा जाए यह इस तथ्य पर निर्भर करता है कि आप उसे किस दृष्टि में देखते हैं। विभिन्न सर्वमान्य आधारों पर संसाधनों का वर्गीकरण निम्न रूपों में किया जा सकता है-

I)	उपयोग की सततता पर आधारित	वर्गीकरण
(1)	नवीकरणीय या नव्यकरणीय	संसाधन
(2)	अनवीनीकरण या अनवीकरणीय	संसाधन
(3)	चक्रीय	संसाधन
II)	उत्पत्ति के आधार पर	वर्गीकरण
(1)	अजैविक	संसाधन
(2)	जैविक	संसाधन
III)	उद्देश्य पर आधारित	वर्गीकरण
(1)	ऊर्जा	संसाधन
(2)	कच्चा	माल
(3)	खाद्य	पदार्थ

3.2.1 उपयोग की सततता के आधार पर वर्गीकरण
 किसी भी संसाधन के उपयोग की एक विधि होती है। कुछ संसाधन न्यून अवधि के अन्दर समाप्त हो जाते हैं जबकि कुछ का सतत उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपयोग की निरन्तरता या सततता के आधार पर संसाधनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **नवीनीकरण संसाधन** - इस श्रेणी में वे सभी संसाधन आते हैं जिनको पुनः उत्पादित किया जा सकता है। इस हेतु भौतिक, यान्त्रिक तथा रासायनिक प्रतिक्रियाएँ अपनाई जाती हैं अतः ये संसाधन असमाप्त होते हैं व इनकी जीवन-धारणीय पुनरावृत्ति संभव है। उदाहरणार्थ, वनों के एक क्षेत्र के काटे जाने के उपरान्त नये क्षेत्र में इन्हें पुनः उत्पादित किया जा सकता है। वन्य प्राणियों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है, इसके अन्य उदाहरण सौर ऊर्जा, पवन, जल, मृदा, कृषि उपज तथा मानव संसाधन हैं।



संसाधनों का वर्गीकरण (2) अनवीकरणीय संसाधन - संसाधनों के सतत उपयोग की श्रेणी में ऐसे संसाधन जिनका एक बार दोहन करने के उपरान्त उनकी पुनः पूर्ति संभव नहीं है। इनकी मात्रा सीमित होती है तथा निर्माण अवधि भी लम्बी होती है। अतः इस श्रेणी के संसाधनों का दोहन तीव्र गति से करने पर ये समाप्त हो जाते हैं। भू-गर्भ में विद्यमान खनिज संसाधन इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं। कोयले का दोहन एक ही बार किया जा सकता है, जबकि इसके निर्माण में करोड़ों वर्ष लगे हैं। पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस, तांबा, बाँक्साइट, यूरेनियम, थोरियम आदि संसाधन भी अनवीकरणीय या समाप्त हैं।

(3) **चक्रीय संसाधन** - पृथ्वी पर कुछ ऐसे संसाधन पाये जाते हैं जिनका बार-बार प्रयोग किया जा सकता है, जल संसाधन को विभिन्न समय में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार लोहा भी विभिन्न रूपों में उपयोग में आता है।

3.2.2 उत्पत्ति के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण
विभिन्न प्रकार के संसाधन अलग-अलग अवस्थाओं में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उत्पत्ति के आधार पर निम्न श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है- प्रथम भौतिक या अजैविक तथा द्वितीय जैविक संसाधन। भौतिक तथा जैविक संसाधन परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। स्वयं मानव एक जैविक संसाधन है जो पृथ्वी के स्थलीय स्वरूपों में परिवर्तन करते हुए क्रियाशील रहता है। इसी आधार पर मनुष्य ने सांस्कृतिक विकास किया है। इनके एक-दूसरे से अन्तर्सम्बन्धित रहने पर भी अनेक भिन्नताएँ हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है-

(1) **अजैविक संसाधन** - इस श्रेणी के अन्तर्गत अजैविक या अकार्बनिक संसाधन आते हैं जिनमें जीवन-क्रिया नहीं होती है तथा इनका नवीनीकरण सम्भव नहीं है। ये एक बार उपयोग में लेने के उपरान्त समाप्त प्रायः हो जाते हैं। अतः इनके समाप्त संसाधनों की श्रेणी में होने के कारण पोषणीय या आनुपातिक दोहन ही अनिवार्य है। जल, जमीन तथा खनिज इसके उदाहरण हैं।

(2) **जैविक संसाधन** - जैवमण्डल में स्थित अपने निश्चित जीवन-चक्र वाले संसाधन जैविक संसाधन कहलाते हैं। वन, वन्य प्राणी, पशु, पक्षी, वनस्पति तथा अन्य छोटे तथा सूक्ष्म जीव जैव संसाधनों के उदाहरण हैं।

3.2.3 उद्देश्य पर आधारित वर्गीकरण
प्रकृति में विभिन्न रूपों में वितरित संसाधनों का दोहन विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्यों या संसाधन-उपयोगिता के आधार पर संसाधनों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है-

(1) **ऊर्जा संसाधन** - ऊर्जा संसाधनों द्वारा शक्ति के साधनों का विकास किया जाता है। यातायात के साधनों के संचालन में उद्योगों व अन्य यान्त्रिक कार्यों में इस शक्ति का उपयोग किया जाता है। वर्तमान समय में ऊर्जा संसाधनों को किसी भी देश के विकास का मानक माना जाने लगा है। वन, जलविद्युत, पवन, ऊर्जा, सौर ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा तथा ज्वारीय ऊर्जा आदि को नवीकरणीय या असमाप्य ऊर्जा की श्रेणी में रखा गया है।

(2) **कच्चा माल** - कच्चा पदार्थ औद्योगिक विकास का प्रमुख आधार है। ये निम्न तीन प्रकार के होते हैं-

(i) **खनिज पदार्थ** - भूगर्भ से खोदकर निकाले गये पदार्थों को इस श्रेणी में रखते हैं। इनमें लौह अयस्क, अलौह धातुएँ, गंधक, नमक, चूना-पत्थर, चोका, बालू इमारती पत्थर तथा अन्य मिश्रित धातुएँ समाहित हैं।

(ii) **वनस्पति** - प्राकृतिक वनस्पति से प्राप्त प्रमुख एवं गौण उपजें इस श्रेणी में आते हैं। इनमें लकड़ी, रेशेदार उत्पाद, गोंद, रबर, तेल, बीज, छाले, कार्क, शैवाल तथा अनेक प्रकार के कृषि उत्पाद सम्मिलित हैं।

(iii) **पशु** - पशुओं को भी कच्चे माल की श्रेणी में रखते हैं। पशुओं से कच्चे माल के रूप में खालें, समूर, सींग, तेल चर्बी, ऊन, बाल, रेशम तथा हड्डियाँ प्राप्त होती हैं। ये उत्पाद जंगली, सामूहिक तथा पालतू पशुओं से प्राप्त किये जाते हैं।

(iv) **उत्पादित पदार्थ** - इसमें रेशे (कपास, ऊन, पटसन, हेम्स) बागानी रबर, तिलहन बीज तथा इत्र निकालने के फूल आदि सम्मिलित हैं।

(3) **खाद्य पदार्थ** - मनुष्य प्राचीनकाल से खाद्य संग्राहक रहा है। खाद्य पदार्थ मुख्य रूप से तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त किये जाते हैं-

(i) **खनिज** - इसमें जल तथा चट्टानों से प्राप्त नमक समाहित है जो मुख्यतया खाद्य पदार्थों के रूप में प्रयुक्त होता है।

(ii) **वनस्पति** - हम भोजन का अधिकांश भाग वनस्पति उत्पादों से प्राप्त करते हैं। वनस्पति उत्पादों में फल, कन्दमूल, पत्तियाँ एवं खुबी आदि प्रमुख हैं।

(iii) **पशु एवं जीव-जन्तु** - पशुओं एवं जीव-जन्तुओं से प्रमुख तथा गौण उपजें प्राप्त करते हैं। मुर्गीपालन मधुमक्खी पालन मत्स्यपालन व्यवसाय आदि इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

3.3 अधिकार या स्वामित्व के आधार पर संसाधनों का वर्गीकरण

(1) **अन्तरराष्ट्रीय या सार्वभौमिक संसाधन**- सम्पूर्ण विश्व के मानव कल्याण के लिये उपयोगी वस्तुओं को अन्तरराष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। पृथ्वी का प्राकृतिक पर्यावरण इस प्रकार का विश्वव्यापी संसाधन है।

(2) **राष्ट्रीय संसाधन** - ग्लोब पर स्थित किसी भी देश की सीमाओं में विद्यमान सम्पदाओं को राष्ट्रीय संसाधन कहते हैं। भारत के खनिज भारतीय संसाधन हैं।

(3) **व्यक्तिगत संसाधन** - किसी व्यक्ति की निजी चल-अचल सम्पत्ति उसका व्यक्तिगत संसाधन कहलाती है। पारिवारिक सम्पत्ति, भूमि, भवन, नकद धनराशि, स्वास्थ्य, उत्तम चरित्र, ईमानदारी तथा मानसिक क्षमता एवं कौशल आदि व्यक्तिगत संसाधन हैं तत्त्वों या वस्तुओं के निर्माण में सहायक कारकों के आधार पर संसाधनों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं-

(1)	प्राकृतिक	संसाधन
(2)	मानव	संसाधन

(1) प्राकृतिक संसाधन- प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। नार्टन एस. जिन्सबर्ग ने बताया कि, 'प्रकृति द्वारा स्वतंत्र रूप से प्रदान किये गये पदार्थ जब मानवीय क्रियाओं से आवृत होते हैं तो उन्हें प्राकृतिक संसाधन कहते हैं।' गाउडी के अनुसार, प्राकृतिक पर्यावरण के मानवीय उपयोग योग्य घटक प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। भौतिक सन्दर्भ में जीवमण्डल तथा स्थलमण्डल में संसाधनों के प्राकृतिक वितरण, प्रकार तथा उनके उपयोग के प्रभावों के आधार पर इनकी प्रकृति का निर्धारण किया जाता है। इस आधार पर किसी देश की भौगोलिक स्थिति, आकार, धरातल, जलवायु, वनस्पति, मृदा, पवन, जल पशु, खनिज, सूर्य का प्रकाश आदि तत्व प्राकृतिक संसाधन हैं। इनमें कुछ संसाधन संघृत या दीर्घ पोषणीय हैं जो लम्बे समय तक उपलब्ध रहेंगे। जैसे-जल, पवन आदि। जबकि कुछ संसाधन जैसे- कोयला, पेट्रोलियम जिनके सीमित भण्डार हैं-लम्बी अवधि तक उपलब्ध नहीं रहेंगे।

प्राकृतिक संसाधनों के विषय में उनकी प्रकृति एवं परिभाषा के विश्लेषण के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष स्पष्ट हुए हैं-

- (i) प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक वातावरण के मुख्य घटक हैं।
- (ii) ये मनुष्य के लिये प्रकृति प्रदत्त हैं। अर्थात् प्राकृतिक उपहार हैं।
- (iii) ये संसाधन प्रकृति में बिना मानवीय अनुक्रिया के स्वयं निष्क्रिय रहते हैं लेकिन जब मनुष्य उन्हें उपयोग में लेता है तो ये सक्रिय रूप में आर्थिक विकास में सहयोग करते हैं।
- (iv) इनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न होती हैं, जिसमें कुछ समाप्य तथा कुछ असमाप्य या नव्यकरणीय होते हैं।
- (v) प्राकृतिक संसाधनों में विविधता पायी जाती है।
- (vi) ये मुख्यतः दो वर्गों - जैविक तथा अजैविक रूप में मिलते हैं।
- (vii) ये सभी ज्ञात न होकर कुछ अज्ञात भी होते हैं।

प्रकृति का कोई भी तत्व तभी संसाधन बनता है जब वह मानवीय सेवा करता है। इस संदर्भ में 1933 में जिम्मरमैन ने यह तर्क दिया था कि, 'न तो पर्यावरण उसी रूप में और न ही उसके अंग संसाधन हैं, जब तक वह मानवीय आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में सक्षम न हो।' प्राकृतिक संसाधनों की प्रकृति गतिशील है जो मानवीय ज्ञान एवं कौशल के विकास द्वारा परिवर्तित होते हैं तथा उनका विकसित रूप अधिक विस्तृत होकर बहुउपयोगी रूप में उपलब्ध होता है। प्राकृतिक संसाधनों के एकल तथा सामूहिक दशाओं के योग में ही जैविक समुदाय का अस्तित्व सम्भव है।

(2) मानव संसाधन- संस्कृति का निर्माता मानव स्वयं एक शक्तिशाली संसाधन है, जो प्राकृतिक तत्वों को अपने ज्ञान एवं कौशल के विकास के द्वारा संसाधन रूप में उपयोग करता है। वह संसाधनों का निर्माता एवं उपभोक्ता दोनों है, जो एक भौगोलिक कारक व संसाधन के रूप में सम्मिलित होकर कार्य करता है। मानव संसाधन में किसी निश्चित इकाई क्षेत्र में रहने वाली मानव जनसंख्या उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमता, स्वास्थ्य, जनसंख्या के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संगठन तथा वैज्ञानिक व तकनीकी स्थिति जैसी विशेषताएँ सम्मिलित हैं। प्राकृतिक वातावरण में जब तक मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है तब तक मानव संसाधन कोई समस्या का रूप नहीं लेता है, लेकिन इनकी संख्या बढ़ने पर आवश्यकताओं की आपूर्ति घटने लगती है तथा स्वयं मानव संसाधन भी समस्या बन जाता है।

मानव एक सक्रिय प्राणी के रूप में पृथ्वी तल पर विद्यमान संसाधनों एवं प्राकृतिक परिवेश का उपभोग करते हुए उसके साथ समायोजन करता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में वह अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुसार प्रकृति प्रदत्त तत्वों में श्रेष्ठ का चयन करता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये पृथ्वी तल को अनेक रूपों में परिवर्तित करता है। कृषि विकास के लिये पहाड़ी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा खेत बनाता है। नदी घाटियों पर बहुउद्देशीय परियोजनाओं का विकास करता है। एक ओर आर्थिक समृद्धि के लिये प्राकृतिक वनस्पति का विनाश करता है, वहीं दूसरी ओर इसके संरक्षण की सोच उत्पन्न कर वृक्षारोपण करता है।

संसाधनों के उपयोग की दृष्टि से मानव केन्द्रीय स्थिति रखता है तथा निरंतर प्राकृतिक परिवेश को परिवर्तित कर उसके अनुरूप अनुकूलन करता है। प्राकृतिक घटकों के रूपान्तरण की प्रकृति एवं दर मनुष्य की बौद्धिक, आर्थिक एवं सामाजिक विकास पर निर्भर करती है। मानव ने पृथ्वी पर अपने सांस्कृतिक अभ्युदय के साथ-साथ विभिन्न भू-भागों का उपयोग किया है जहाँ सर्वप्रथम कृषि एवं पशुपालन का विकास किया तथा धीरे-धीरे मृदा के उपयोग, जल एवं खनिज संसाधनों के महत्व को पहचान कर भौगोलिक एवं आर्थिक समायोजन करके संसाधन उपयोग

का ढंग सीखा। संसाधन उपयोग का प्रारम्भिक स्वरूप केवल आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित था लेकिन धीरे-धीरे इसका स्वरूप आर्थिक विकास ने ले लिया तथा मानव ने संसाधनों के दोहन की दर में वृद्धि की जिसके फलस्वरूप उनकी कमी महसूस होने लगी तथा मानव को इसके संरक्षण की बात सोचनी पड़ी।

3.4 प्राकृतिक संसाधन एवं संबद्ध समस्याएँ
 21वीं शताब्दी में मानव एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व में उलझ गया है जहाँ एक ओर तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या के सामने खाद्य समस्या एवं संसाधनों की उपलब्धता की समस्या है तो दूसरी ओर निरंतर हो रहे संसाधनों के मात्रात्मक एवं गुणात्मक हास की समस्या उत्पन्न हो गई है। वातावरण घटता जा रहा है, भूमि संसाधन का अवनयन एवं कृषि उत्पादों में कम, जल संसाधनों की उपलब्धता में कमी आदि समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आज अधिकाधिक खाद्यान्न उत्पादन के लिये भूमि की उत्पादकता में वृद्धि एवं सिंचित क्षेत्रों में विस्तार की आवश्यकता है लेकिन दूसरी ओर सिंचित भूमि में जल प्लावन तथा लवणीयता की समस्या उद्भूत से उर्वर भूमि संकुचित हो रही है। ईंधन आपूर्ति के प्रयासों का प्रभाव खाद्य आपूर्ति पर दृष्टिगत हो रहा है। इस प्रकार संसाधनों की उपलब्धता बढ़ाना ही दूसरे रूप में संसाधन संकट का रूप ले रही है।

आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये प्रकृति में विभिन्न परिवर्तन किये गये जो तत्कालीन पर्यावरणीय दशाओं के सन्दर्भ में अनुकूल माने गये लेकिन कालान्तर में ये विकास कार्य ही समस्याएँ बन गईं। प्रारम्भ में कृषि विकास के लिये तीव्र वनोन्मूलन किया गया। विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं के विकास के लिये भी बड़े पैमाने पर वनावरण में कमी की गई, जिसे आज तक पुनः संतुलित नहीं किया जा सका है। जल संसाधनों अविवेकपूर्ण दोहन किया गया जिससे उनकी मात्रा में कमी के साथ ही प्रदूषण से गुणात्मक हास भी हो गया फलस्वरूप मानव जाति के लिये जल संसाधनों की उपलब्धता घटी है। स्पष्ट है वन, जल, खनिज, खाद्य, ऊर्जा तथा भूमि संसाधनों का विगत शताब्दी में विभिन्न आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अति दोहन किया गया। फलस्वरूप इनकी उपलब्धता में कमी आयी इस कमी ने समस्या का रूप ले लिया है। इन संसाधनों से संबद्ध विभिन्न समस्याओं का विवरण निम्नलिखित है-

3.4.1 वन संसाधन अतिदोहन उपयोग एवं

वन संसाधन हमारे पर्यावरण सन्तुलन का महत्वपूर्ण घटक है। वन क्षेत्र में कमी आने तथा अनियमित कटाई को वनोन्मूलन या वन विनाश कहते हैं। मानव के आर्थिक जीवन की प्रत्येक गतिविधि किसी न किसी प्रकार से वनों से सम्बन्धित है। वन प्रकृति की अमूल्य सम्पदा है जो वातावरण के महत्वपूर्ण जैविक घटक के रूप में विकसित है इनकी महत्ता के आधार पर इन्हें 'हरा सोना' कहते हैं। वर्तमान समय में वनों का महत्व बढ़ता जा रहा है। कुल उत्पादन का 33 प्रतिशत भवन निर्माण सामग्री में तथा 50 प्रतिशत ईंधन के रूप में उपयोग होते हैं। वनों से मानव को इमारती लकड़ी के अतिरिक्त रबर, सेल्यूलोज, लाख कत्था, गोंद, जड़ी-बूटियाँ आदि प्राप्त होती हैं। वन संसाधन अपने निकटवर्ती पर्यावरण की जलवायु को भी प्रभावित करते हैं।

जलवायु सन्तुलन के साथ ही जैवविविधता के संरक्षण स्थल हैं, मृदा अपरदन को नियंत्रित करते हैं। भौतिक संस्कृति के दौर में आर्थिक लाभ हेतु मानव वनों का अतिदोहन कर रहा है जिसके उपरान्त सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र विकृत हो जाता है। विगत तीन दशकों में प्रगति की दौड़ में अंधे हुए मानव ने वनों की पोषणीय सीमा को लांघ कर अत्यधिक विनाश किया है जिसके परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, भूमि की उर्वरा-शक्ति में हास भूस्खलन, भूक्षरण मरुस्थलीकरण, जलप्लावन, भूजल में कमी, जलवायु में परिवर्तन आदि समस्याएँ उभरकर सामने आयी हैं। अतः वनों का अनवरत हास स्वस्थ पर्यावरण को खतरा बना गया है।

भारत के कुल क्षेत्रफल 3287263 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में से 633397 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर वनाच्छादित है जो कुल क्षेत्र का 19.47 प्रतिशत है, जबकि स्वस्थ पारिस्थितिक तंत्र का 33 प्रतिशत भू-भाग वनाच्छादित होना चाहिए। इस दृष्टि से 14 प्रतिशत वन क्षेत्र कम है।

वनोन्मूलन

प्रकृति में वनोन्मूलन कई प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिये किया जाता है यद्यपि वन विनाश प्राकृतिक कारणों से भी होता है, किंतु मानवीय क्रियाओं की गतिशीलता तीव्र एवं लम्बी होती है। अतः स्थानीय, प्रादेशिक तथा विश्व स्तर पर वन विनाश के निम्न प्रमुख कारण हैं-

(1) **कृषि कार्य-** प्रारम्भिक काल में मानव वनोपजों से ही अपना जीवन निर्वाह करता था, किंतु जैसे-जैसे कृषि का विकास आरम्भ हुआ विस्तृत

पैमाने पर वनों को साफ करके कृषि भूमि में परिवर्तित किया गया। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण यह कार्य और भी तीव्र हो गया। कृषि एक अत्यावश्यक क्रिया है लेकिन वन संसाधन के साथ सामंजस्य करके किया जाना चाहिए। वनों को सर्वाधिक हानि स्थानान्तरित कृषि द्वारा होती है। यह प्राचीनतम कृषि पद्धति है जो आन्ध्र प्रदेशों के वर्षा प्रचुर वनों एवं अर्द्धमरुस्थलीय क्षेत्रों में प्रचलित है।

(2) **वनों का चारागाहों में परिवर्तन** - बढ़ती पशु संख्या एवं घटते चारागाहों की स्थिति में वन क्षेत्र को साफ करके चारागाहों में रूपान्तरित कर लिया जाता है। भूमध्यसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों तथा शीतोष्ण कटिबन्ध क्षेत्रों में वृहत स्तर पर वन भूमि पर चारागाह विकसित किये गये हैं। डेयरी फार्मिंग व्यवसाय के अन्तर्गत विकसित देश भी ऐसा कर रहे हैं। अतः इस क्रिया के उपरान्त भी पर्यावरण को गति मिलती है।

(3) **निर्माण कार्य के लिये वन विनाश** - 1860 के दशक में औद्योगिक क्रान्ति के उपरान्त वन क्षेत्र को भी संभावना का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र माना गया तथा वन आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास किया गया। बढ़ती जनसंख्या, नगरीकरण तथा आवासीय आवश्यकताओं के लिये वन आधारित निर्माण कार्य तीव्र हुए हैं। शहरी क्षेत्र वनों को साफ कर तीव्रता से प्रसार कर रहे हैं, जबकि सड़क निर्माण, आवास निर्माण, रेलवे लाइनों आदि के लिये भी वनोन्मूलन किया जाता है।

(4) **व्यापारिक उद्देश्यों हेतु वन विनाश** - वर्तमान प्रोद्योगिक मानव अपने घरेलू एवं व्यापारिक प्रयोजनों हेतु भी वन विनाश कर रहा है, क्योंकि तीव्र गति से बढ़ रही जनसंख्या के कारण लकड़ी की माँग बढ़ रही है। व्यापारिक स्तर पर लकड़ी काटने का कार्य, कागज एवं लुग्दी उद्योग, दिया-सलाई निर्माण, इमारतें बनाने, पुल, रेल के डिब्बे नावों तथा अन्य निर्माण कार्यों हेतु होता है।

(5) **खनिज खनन** - खनिजों के खनन हेतु वनों को साफ किया जाता है। व्यापारिक स्तर पर किये जाने वाले खनन के दौरान तीव्र वन विनाश होता है। वन विनाश के उपरान्त खनन करते हैं तथा खनन हेतु वृहद खंडों का निर्माण हो जाता है जिनका पुनः उस रूप में विकसित किया जाना संभव नहीं है। राजस्थान के अरावली पर्वतीय क्षेत्रों में संगमरमर तथा तांम्बा एवं अन्य खनिजों के खनन के लिये वन विनाश किया जा रहा है।

(6) **वनाग्नि** - वनाग्नि द्वारा भी वन विनाश होता है जिसकी उत्पत्ति प्राकृतिक तथा मानवीय दोनों कारणों से हुई है। प्राकृतिक कारणों में वायुमण्डलीय बिजली सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मानवीय कारणों में मानव उद्देश्य वनों को जलाता है। कृषि एवं चारागाह विकास हेतु भूमि साफ करने के लिये भी वनों को जलाता है। पशु चरवाहे भी आग का कारण बन जाते हैं। आग लगने से वन पारिस्थितिकी तंत्र की जैव विविधता नष्ट होकर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करती है। एक ओर जंगलों में कई प्रकार के जीव-जन्तु निवास करते हैं, तो दूसरी ओर वनों से प्राप्त पत्तियों द्वारा मृदा को जीवाश्म प्राप्त होता है।

(7) **जीवीय कारकों द्वारा वन विनाश** - जीवीय कारकों द्वारा भी वनों का विनाश होता है जिनमें पालतू जानवर तथा सूक्ष्म जीवाणु प्रमुख हैं। जानवर स्वतंत्र विचरण करके वनों का विनाश करते हैं, जबकि सूक्ष्म जीवाणु जैसे दीमक, कीट आदि विभिन्न प्रकार के हानिकारक प्रभाव डालते हैं। उष्ण तथा उपोष्ण कटिबन्धीय तथा शुष्क प्रदेशों में पशुओं के अतिचारण से भारी वन विनाश हुआ है। इन वनों में पशुओं के बड़े-बड़े झुण्ड सूक्ष्म वनस्पति को नष्ट करके मृदा के ऊपरी आवरण को भी क्षतिग्रस्त कर देता है जिससे वन विनाश हो जाता है।

वनोन्मूलन के पर्यावरण पर प्रभाव
वन संसाधन जलवायु सन्तुलन के प्रमुख तत्व माने जाते हैं। वन विनाश का प्रभाव सम्पूर्ण पारिस्थितिक तंत्र पर दृष्टिगोचर होता है जिसके उपरान्त जीव-जन्तु भी प्रभावित होते हैं। तीव्र मृदा अपरदन, बाढ़, सूखा आदि क्रियाओं में तीव्रता आती है। वन विनाश के निम्नलिखित दुष्प्रभाव प्रमुख हैं-

1.	जलवायु	पर	प्रतिकूल	प्रभाव
2.	बाढ़ों	की		पुनरावृत्ति
3.	जल संसाधनों	की	मात्रा पर	प्रभाव
4.	मृदा	अपरदन	में	वृद्धि
5.	जैव	विविधता	का	हास

उपर्युक्त प्रभावों के अतिरिक्त वन विनाश के कारण भूमि संसाधन भी विकृत होते हैं। मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया को उर्जा मिलती है तथा

भूमि बंजर होती है। वन विभिन्न प्रकार के उद्योगों से निस्सृत कार्बन-डाई-आक्साइड को अवशोषित करते हैं। वन विनाश के कारण प्रवृत्ति में प्राकृतिक सन्तुलन बिगड़ने के साथ ही विश्वव्यापी ताप बढ़ने की समस्या उभरेगी। इस सभी क्रियाओं के उपरान्त पर्यावरण अवनयन को गति मिलती है।

3.4.2 जल संसाधन

जल पृथ्वी पर पाये जाने वाला वह अमूल्य प्राकृतिक संसाधन है जो प्रकृति की रचना में सहभागी होकर सम्पूर्ण जीवमण्डल को आधार प्रदान करता है। यह प्रकृति में विभिन्न स्थानों में विभिन्न रूपों में वितरित है तथा सदैव गतिशील रहता है। प्रकृति में किसी स्थान पर इसकी स्थिरता भिन्न-भिन्न समयावधियों में रहती है। इसका स्वरूप तथा आकार भी परिवर्तनशील है। यह कहीं जलवाष्प में तथा कहीं हिम अथवा द्रव के रूप में पाया जाता है। जलवायु एवं स्थिति के अनुसार यह स्वरूप निर्धारित होता है तथा इसके स्वरूप परिवर्तन में सूर्य से प्राप्त ऊष्मा की प्रमुख भूमिका होती है। स्थलमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल में विद्यमान जल विभिन्न अवस्थाओं (ठोस, द्रव, गैस) में अपनी भौगोलिक स्थिति बदलता रहता है। यह परिवर्तन जलीय चक्र के माध्यम से पूर्ण हो पाता है।

पृथ्वी पर उपलब्ध जल का 1 प्रतिशत भाग जलीय चक्र में भाग लेता है। तापमान जलीय चक्र में ऊर्जा का कार्य करता है। इस प्रकार धरातल पर स्थित विभिन्न जल स्रोतों, झील, तालाब, नदियाँ, पेड़-पौधे तथा समुद्रों में उपलब्ध जल का वाष्पीकरण होगा एवं यह जल वायुमण्डल में प्रवेश करेगा, इसके उपरान्त तापमान कम होने के कारण संघनन होकर यह वाष्पीकृत जल वर्षा के रूप में पुनः धरातल पर आ जाता है। इस प्रकार जल का जो चक्र पूरा होता है उसे जलीय चक्र कहते हैं।

पृथ्वी पर संचालित होने वाले जल चक्र के मध्य अनेक ऐसे अभिकरण होते हैं जो इसकी गतिशीलता को प्रभावित करते हैं। नमी की अवस्था तथा अवस्थिति में निरन्तर सम्बन्धित परिवर्तन होते रहते हैं यथा जो नमी वायुमण्डल को प्राप्त होती है वह जल, ऑस, हिम, पाले आदि किसी भी रूप में धरातल या समुद्रों को पुनः प्राप्त हो सकती है। अतः अवस्था एवं अवस्थिति में होने वाले इन परिवर्तनों के फलस्वरूप जलीय चक्र की प्रक्रिया में बाधाएँ आती हैं।

सूर्य से प्राप्त ऊर्जा (तापमान) के कारण महासागरों का जल जलवाष्प का रूप धारण कर वायुमण्डल में प्रवेश करता है। महासागरों से स्थल की ओर चलने वाली पवन इस जलवाष्प को गति देती है तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करती है। इसके उपरान्त इस जलवाष्प का जब संघनन होता है, तो भू-सतह पर वर्षा होती है तथा वर्षा से धरातल को प्राप्त होने वाला यह जल नदी नालों के रूप में पृष्ठ पर बहता है और अन्त में महासागरों में प्रवेश कर जाता है। सौर ऊर्जा से यह जलचक्र गति करता है।

इस प्रकार वर्षा से प्राप्त इस जल का कुछ भाग वनस्पतियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन होने से हास हो जाता है तथा कुछ जल नदियों, तालाबों, झीलों आदि से वाष्पीकरण द्वारा पुनः वायुमण्डल में पहुँच जाता है। धरातल पर होने वाली जलवर्षा के कुछ भाग का भू-सतह के नीचे अन्तः स्पन्दन हो जाता है। मृदा में स्थित इस जल भण्डार को शुद्ध जल भण्डार कहते हैं। जिसका भी पौधों से वाष्पोत्सर्जन द्वारा हास होता रहता है। कुछ जलस्रोतों के रूप में पुनः धरातल पर आ जाता है तथा मृदा जल भण्डार से कुछ भाग नीचे की ओर संचरित हो जाता है। धरातल के नीचे संग्रहित इस जलीय भाग को भूमिगत जल कहते हैं।

धरातलीय एवं भूजल का अति दोहन

जल मण्डल में पाया जाने वाला पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर रूपों में वितरित है। इसका अधिकांश भाग (97.39) लवणीय रूप में सागरों में वितरित है। जबकि स्वच्छ जल बहुत कम मात्रा में मिलता है। जलवाष्प वायुमंडल का महत्वपूर्ण घटक है जो ऊर्जा चक्र में अपनी प्रमुख भूमिका रखता है। इस प्रकार सामान्यतः जलीय वितरण में धरातलीय भूमिगत तथा महासागरीय जल को सम्मिलित करते हैं जबकि वायुमंडलीय जलवाष्प अनेक क्रियाओं को पूर्ण करती है। जल विश्वव्यापी वितरण जलीय चक्र के माध्यम से पूर्ण संतुलित रहता है जिसमें जलवाष्प का अपना भौगोलिक महत्व होता है।

प्रकृति में विभिन्न दशाओं में जल का स्थायित्व		
स्थान	आकार (Km ³)	ठहरने की समयावधि
पादप एवं जीव जन्तु	700	1 सप्ताह

वायुमण्डल	13,000	8-10 दिन
नदियाँ	1,700	2 सप्ताह
मृदा	65,000	2 सप्ताह से 1 वर्ष
झील, भंडारग्रह	1,25,000	वर्षों तक
आद्र भूमि, (भूमिगत जल)	70,000,00	कुछ दिनों से हजारों वर्षों तक
हिम	26,000,000	हजारों वर्षों तक
महासागर	13,70,000,000	हजारों वर्षों तक

जल संसाधन वर्तमान में पृथ्वी पर निम्नलिखित रूपों में मिलता है -

(1) धरातलीय जल (2) भूजल (3) महासागर

धरातलीय

जल

पृथ्वी के धरातल पर जल राशि स्थिर एवं गतिशील दोनों रूपों में पायी जाती है। जलीय स्वरूप के आधार पर भी जल विभिन्न रूपों में मिलता है। उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में हिम टोपियों तथा हिमनदों के रूप में तथा निम्नवर्ती भागों में द्रव अवस्था में मिलता है। धरातलीय जल महाद्वीपीय भागों पर वितरित है। संसार में सात महाद्वीपों में से अंटार्कटिका महाद्वीप की भौगोलिक स्थिति अन्य से भिन्न है जिस पर दो तिहाई से भी अधिक स्वच्छ जल हिम के रूप में जमा है जबकि ऑस्ट्रेलिया में स्थायी हिम क्षेत्र नहीं है। अंटार्कटिका एवं ग्रीनलैण्ड के अतिरिक्त अन्य स्थलीय भागों में हिमराशि पायी जाती है जो हिम रेखा के ऊपर मिलती है।

ऊर्ध्वाधर रूप में हिम रेखा ऊँचाई के साथ सामान्य ताप पतन दर (6.5°C/1000m) पर निर्भर करती है। यह दशा सापेक्षिक रूप से भू-मध्य रेखा से दूरी द्वारा भी नियन्त्रित होती है।

पृथ्वी के महाद्वीपीय क्षेत्रों का औसत जल सन्तुलन			
महाद्वीप	वार्षिक वर्षा (से.मी.)	वार्षिक वाष्पीकरण (से.मी.)	वार्षिक प्रवाह (से.मी.)
एशिया	60	31	29
अफ्रीका	69	43	26
उत्तरी अमरीका	66	32	34
दक्षिणी अमरीका	163	70	93
यूरोप	67	39	25
अंटार्कटिका	16	3	14
ऑस्ट्रेलिया	47	42	5
कुल स्थलीय क्षेत्र	73	42	31

इस प्रकार भू-सतह पर जल विभिन्न दशाओं में वितरित है जिसका सामान्य विवरण निम्नलिखित है-

(1) नदियाँ - धरातलीय जल स्रोतों में नदियों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये उच्च पर्वतीय क्षेत्रों, हिमाच्छादित चोटियों, झीलों आदि से निकल कर विस्तृत भू-भाग में प्रवाहित होती हैं। स्वतंत्र प्रवाह के अतिरिक्त अनेक स्थानों से अन्तःप्रवाह, अन्तःस्रवण द्वारा प्राप्त जल तथा भूजल के झरनों, प्राकृतिक मृदा लाइनों तथा निस्यन्दन द्वारा नदियों को प्राप्त होता है। इस प्रकार विभिन्न धारायें परस्पर मिलकर एक नदी का रूप लेती हैं तथा अंत में किसी सागर में गिर जाती हैं। कुछ नदियाँ झीलों में भी गिरती हैं। नदियों का प्रवाह अपवाह बेसिन के क्षेत्रफल, अपवाह बेसिन की आकृति, कुल वर्षा तथा अपवाह बेसिन की सतही दशाओं द्वारा नियंत्रित होता है।

(2) **झीलें** - झीलें पृथ्वी तल पर पाये जाने वाली प्रमुख जल राशियाँ हैं। झीलें जलीय गुणवत्ता एवं प्रकृति के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। इस दृष्टि से अलवणीय या स्वच्छ जलीय झीलें, लवणीय या खारे पानी की झीलें तथा हिम झीलें प्रमुख हैं। स्थिति के अनुसार पर्वतीय, पठारी तथा मैदानी झीलें होती हैं।

(3) **नहरें** - परिवहन, सिंचाई तथा जल विद्युत उत्पादन के लिये नहरों का निर्माण करते हैं जिनमें धरातलीय जल भण्डारित रहता है। ये नहरें राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय महत्व की होती हैं जो दो नदियों, खाड़ियों या समुद्रों की दूरी कम करने के लिये भी बनायी जाती हैं।

भूजल

भू-सतह के नीचे स्थित शैल छिद्रों तथा दरारों में विद्यमान जल को भूजल कहते हैं जो वर्षा की मात्रा एवं गति, वर्षा के समय, वाष्पीकरण की मात्रा, तापमान, भूमि के ढाल, वायु की शुष्कता, शैलों की रन्ध्रता एवं अभेद्यता, वनस्पति आवरण तथा मृदा की जल अवशोषक क्षमता से नियन्त्रित होती है। धरातलीय प्रवाह अन्तःस्रवण द्वारा भूमिगत होता है। कुल जल संसाधन का भूमिगत जल 0.58 प्रतिशत है तथा सम्पूर्ण जलीय राशि के शुद्ध जलीय भाग (287 प्रतिशत) का 22.21 प्रतिशत है जो 4 कि.मी. की गहराई तक स्थित है। धरातल के नीचे मिलने के कारण इसे अर्धसतही जल भी कहते हैं।

भूजल

के

स्रोत

भूजल पृथ्वी तल के ऊपर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त होकर भूमिगत होने वाला जल है जो धरातल के अन्दर पाये जाने वाले सुराखों से पारगम्य शैलों द्वारा भूमिगत होता है। यह निम्नलिखित स्रोतों द्वारा प्राप्त होता है।

(1) **आकाशी जल** - यह भूजल का प्रधान स्रोत है। यह जल वर्षा एवं हिम के रूप में प्राप्त होता है।

(2) **सहजात जल** - सागरों एवं झीलों में निक्षेपित अवसादी शैलों के छिद्रों तथा सुराखों में स्थित जल सहजात जल कहलाता है जिसे अवसाद या तलछट जल भी कहते हैं। यह भूजल का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत है।

(3) **मैग्मा जल** - ज्वालामुखी क्रिया के कारण तप्त मैग्मा शैलों में प्रवेश करता है तो इसके वाष्पीय कण संघनीत या घनीभूत होकर जल में परिवर्तित हो जाते हैं जिसे मैग्मा जल कहते हैं।

भूजल का संचयन - भू-सतह पर विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जल नीचे स्थित शैलों के छिद्रों, सुराखों, दरारों तथा संस्तरण तलों में संग्रहित होकर भूजल का रूप लेता है। इसका संचयन शैलों की संरचना पर निर्भर करता है। जल के नीचे की ओर रिसकर शैल रंध्रों में एकत्रित होने को शैलों का संपृक्त होना कहलाता है। जब शैल पूर्णतः जलयुक्त हो जाती है तो उसे संपृक्त शैल कहते हैं। धरातल के नीचे संपृक्त शैल वाले भाग को संपृक्त मंडल कहते हैं तथा इस संपृक्त मंडल का ऊपरी तल भीम जलस्तर या जल तल कहलाता है।

जल

का

उपयोग

जल संसाधन एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है जो सभी संसाधनों का आधार है तथा जल की उपस्थिति के कारण अन्य प्राकृतिक संसाधनों का दोहन एवं संरक्षण सम्भव है। यह एक नव्यकरणीय संसाधन है जिसको एक बार उपयोग के बाद पुनः शोधन कर उपयोग योग्य बनाया जा सकता है। जल ही ऐसा संसाधन है जिसकी हमें नियमित आपूर्ति आवश्यक है जिसे हम नदियों, झीलों, तालाबों, भूजल तथा अन्य पारम्परिक जल संग्रह क्षेत्रों से प्राप्त करते हैं। सागरीय जल का भी उपयोग किया जा सकता है लेकिन इसका अलवणीकरण करना आवश्यक है। वर्तमान समय में लिबिया, कतर, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, इजराइल, यमन आदि देश सागरीय जल को शोधित करके उपयोग में ले रहे हैं।

जल का सर्वाधिक उपयोग सिंचाई में (70 प्रतिशत) किया जा रहा है जबकि द्वितीय स्थान उद्योगों (23 प्रतिशत) का है। घरेलू तथा अन्य उपयोगों में केवल 7 प्रतिशत जल ही उपयोग किया जाता है। लोगों द्वारा पृथ्वी पर विद्यमान कुल शुद्ध जल का 10 प्रतिशत से कम उपयोग किया जा रहा है। लेकिन यह संसाधन समान रूप में वितरित नहीं है जिस कारण सर्वत्र समान रूप से भी जलापूर्ति नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप वर्तमान में कुछ देशों में भयंकर जल संकट उत्पन्न हो गया है। अनेक स्थानों पर जल के उपलब्ध होने पर भी जल संकट की स्थिति बन रही है क्योंकि वहाँ निरन्तर विद्यमान जलस्रोतों में गुणवत्ता हास हो रहा है।

जल संसाधन का निम्नलिखित क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है-

(1) **सिंचाई में उपयोग** - जल का सर्वाधिक उपयोग सिंचाई कार्यों में किया जाता है। सिंचाई कार्यों में सतही एवं भूजल का उपयोग किया जाता है। सतही जल का उपयोग नहरों एवं तालाबों द्वारा किया जाता है जबकि भूजल का उपयोग उत्सुत कुओं तथा नलकूपों द्वारा किया जाता है। विश्व का एक चौथाई भू-भाग ऐसी शुष्क दशाओं वाला है जो पूर्णतया सिंचाई पर निर्भर करता है।

(2) **उद्योगों में उपयोग** - कुल शुद्ध जल संसाधन का 23 प्रतिशत भाग उद्योगों में उपयोग किया जाता है। यही कारण है कि अधिकांश उद्योग जलस्रोतों के निकट (नदी या झील के किनारे पर) स्थापित किये जाते हैं।

(3) **घरेलू कार्यों में उपयोग** - प्रकृति में जल समान रूप से वितरित नहीं है लेकिन इसकी उपलब्ध मात्रा के अनुसार ही जल उपयोग की विधियाँ विकसित कर मानव के प्रकृति के साथ समायोजन किया है। शुष्क क्षेत्रों में जल की कम मात्रा में तथा बहुउद्देशीय उपयोग किया जाता है। घरेलू कार्यों में पीने, खाना बनाने, स्नान करने, कपड़े धोने आदि में जल की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त पशुओं एवं पौधों के लिये भी प्रदूषणरहित जल की आवश्यकता होती है।

(4) **नौपरिवहन** - नदियों, नहरों तथा झीलों में स्थित सतही जल संसाधन का उपयोग नौपरिवहन में किया जाता है। नौपरिवहन में नदी या नहर के पानी की प्रवाह दिशा, जलराशि की मात्रा तथा मौसमी प्रभाव तथा नदियों तथा नहर की लम्बाई की मुख्य भूमिका होती है।

(5) **नहरें** - भू-सतह की विषमता होने पर नदियों के सहारे नहरों का निर्माण किया जाता है। नहरों का निर्माण जल के बहुउद्देशीय उपयोग के लिये किया जाता है जिनमें सिंचाई परिवहन, जल विद्युत, बाढ़ नियंत्रण आदि प्रमुख हैं।

(6) **जल विद्युत** - जल संसाधन एक नवीनीकरण योग्य संसाधन है जो कभी समाप्त नहीं होगा। अतः समाप्त हो रहे ऊर्जा संसाधनों के विकल्प के रूप में जल से विभिन्न रूपों में शक्ति का उत्पादन किया जा रहा है। पृथ्वी पर सर्वाधिक वर्षा भूमध्यरेखीय प्रदेश प्राप्त कर रहे हैं लेकिन उच्चावच विषमता के कारण संभावित जल शक्ति उत्पन्न नहीं कर पाते हैं।

जल मंडल में विद्यमान जल राशि का विभिन्न रूपों में उपयोग कर हम विकास को गति दे रहे हैं जिसमें सतही एवं भूजल के साथ ही महासागरीय जल का भी विविध कार्यों में उपयोग कर रहे हैं। महासागरीय जल को अनेक देश शोधन कर पेयजल एवं सिंचाई में उपयोग में ले रहे हैं। महासागरों का मुख्य उपयोग परिवहन में किया जाता है। इसके अतिरिक्त महासागर भविष्य के ऊर्जा के भंडार हैं। ज्वारीय शक्ति का उत्पादन किया जा रहा है। महासागरों को खाद्य भण्डार भी कहा जाता है। जहाँ प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाला प्लैंक्टन मछली का भोजन बनता है तथा मछलियाँ तीव्रता से विकसित होती हैं। अनेक देशों ने सागरीय जीवों से खाद्य सामग्री तैयार की है।

बाढ़ एवं सूखा
बाढ़, सूखा एवं अकालों के कारण प्राकृतिक पर्यावरण प्रभावित होता है। इन आपदाओं का जल संसाधन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यदि अतिवृष्टि द्वारा जलातिरेक रहता है तो बाढ़ की स्थिति बन जाती है जबकि जलाभाव के कारण सूखा पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप अकालों की उत्पत्ति होती है।

बाढ़ प्रकृति में संचालित जल चक्र का ही एक अंग है। बाढ़ का सामान्य अर्थ होता है विस्तृत स्थलीय भाग का लगातार कई दिनों तक जलमग्न रहना। बाढ़ उस समय प्रकोप बनती है जब इसकी क्रियाशीलता एवं फैलाव इतना हो जाये कि भौतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण का अवनयन आरम्भ हो जाये। विश्व का 35 प्रतिशत भू-भाग बाढ़ प्रभावित है जिसमें विश्व की 165 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। भारत में 4 करोड़ 10 लाख हेक्टेयर क्षेत्र बाढ़ग्रस्त है। प्राकृतिक पर्यावरण को बाढ़ द्वारा अवनयित करने वाली नदियों में गंगा, यमुना, कोसी, दामोदर, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा (भारत), मिसिसिपी तथा मिसौरी (संयुक्त राज्य अमरीका), यांगटिसी तथा यलो (चीन), इरावदी (म्यांमार), सिंध (पाकिस्तान) आदि प्रमुख हैं। बाढ़ की उत्पत्ति प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों कारणों से होती है। सामान्यतया बाढ़ के निम्न कारण हैं-

1.	प्राकृतिक						कारण
(i)	लम्बी	अवधि	तक	उच्च	तीव्रता	वाली	वर्षा,
(ii)		नदियों	के		विसर्पित		मार्ग,
(iii)	भूकम्प,		भूस्खलन	तथा		ज्वालामुखी	उतार
2.	मानवीय						कारण

(i)	नदी	घाटियों	में	वन	विनाश
(ii)			बढ़ता		शहरीकरण
(iii)	बांधों	का टूटना	एवं मानव	द्वारा निर्माण	कार्य (बाँधों व पुलों का),
(iv)		नदियों	के	मार्ग	परिवर्तन,
(v)	भूमि	उपयोग	में	परिवर्तन	आदि।

बाढ़ की प्रवृत्ति के कारण मृदा अपरदन की दर बढ़ती है, मृदायें अनुर्वर होती हैं तथा बंजर भूमि के क्षेत्र में विस्तार हो जाता है। अतः बाढ़ पर नियंत्रण हेतु निम्न उपाय लाभकारी हो सकते हैं-

- वनोन्मूलन पर नियंत्रण लगाकर पुनः वनीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देना,
- मृदा अपरदन पर प्रभावी नियंत्रण
- सीमा से अधिक वर्षा के उपरान्त प्राप्त जल को जल स्रोत (नदियाँ) तक विलम्ब से पहुँचाना, इसके लिये जल संचयन संरचनाएँ विकसित करनी चाहिए,
- प्रकृति के अनुकूल स्थानों पर बांधों का निर्माण करना,
- नदियों के जल प्रवाह की दिशा मोड़ना,
- बाढ़ प्रभावों को कम करना,
- नदियों के जल के नियत समय में विसर्जन हेतु नालियों का निर्माण करना,
- समय रहते बाढ़ की भविष्यवाणी करना
- बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के प्रबंधन हेतु अत्याधुनिक तकनीकी सुदूर संवेदन एवं भौगोलिक सूचना तंत्र की सहायता लेना आदि महत्वपूर्ण उपाय हैं।

सूखा को भी एक अत्यधिक घातक प्राकृतिक प्रकोप माना गया है, क्योंकि इसमें भी प्राकृतिक असंतुलन के साथ ही मानव जीवन भी समाप्त हो जाता है। सूखे की उत्पत्ति जल के अभाव (वर्षा की अनुपस्थिति) के कारण होती है। प्राकृतिक रूप से जब वार्षिक वर्षा 80 प्रतिशत या उससे भी कम मात्रा में तथा मासिक वर्षा सामान्य औसत वर्षा से 70 प्रतिशत कम होती है तो सूखा की स्थिति उत्पन्न होती है। ब्रिटिश वर्षा संगठन के अनुसार सूखा तीन प्रकार का होता है-

- निरपेक्ष सूखा** - इसमें नियमित रूप से 20 दिन तक प्रतिदिन 10 मिलिमीटर से कम वर्षा होती है।
- आंशिक सूखा** - जब कम से कम 30 दिन तक नियमित 10 मिलिमीटर से कम वर्षा होती है।
- शुष्क दौर** - इस अवस्था में नियमित 15 दिनों तक 15 मिलिमीटर से कम वर्षा होती है।

भारतीय परिस्थितियों में ये दशायें पूर्णरूप से लागू नहीं होती हैं। सामान्यतया वर्षा 25 से 50 प्रतिशत कम होती है तो सूखा पड़ता है तथा इसकी कमी 50 प्रतिशत से कम होने पर अकाल का रूप धारण कर लेती है, अतः भारतीय मौसम विभाग के अनुसार वास्तविक वर्षा सामान्य से 75 प्रतिशत से कम होने पर सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार सूखा दो प्रकार का होता है-

- प्रचण्ड सूखा** - प्रचण्ड सूखे की स्थिति में वर्षा सामान्य से 50 प्रतिशत कम होती
- सामान्य सूखा** - जब वर्षा सामान्य से 25 से 50 प्रतिशत होती है तो उसे सामान्य सूखा कहते हैं।

सूखे की उत्पत्ति जलवायुवीय दशाओं के साथ ही मानवीय कारकों के कारण भी होती है। सामान्य रूप से सूखा उत्पन्न होने के निम्न कारण हैं-

- (1) विषम जलवायु परिस्थितियाँ (न्यून वर्षा),
- (2) अन्धाधुन्ध वनोन्मूलन,
- (3) अनियंत्रित पशु चारण
- (4) मरुस्थलीय परिस्थितियाँ आदि।

भारत की कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 1/5 भाग अर्थात् 19 प्रतिशत क्षेत्र अकाल प्रभावित है। राजस्थान का 50 प्रतिशत, आन्ध्रप्रदेश का 50 प्रतिशत, गुजरात का 29 प्रतिशत, कर्नाटक का 25 प्रतिशत क्षेत्र अकालग्रस्त है। सूखा एवं अकाल की स्थिति पर्यावरण अवनयन को बढ़ावा देती है अतः इस पर नियंत्रण के निम्न उपाय कारगर हो सकते हैं-

- (1) शुष्क कृषि पद्धति का विकास किया जाये
- (2) विगत वर्षों के जलवायु आकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त वर्षा की सम्भावना बताना,
- (3) नमी हास रोकना वनारोपण द्वारा नमी की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है
- (4) उपयुक्त राहत कार्यों का प्रभावी ढंग से क्रियान्वयन
- (5) मरुस्थल के प्रसार को नियंत्रित करना
- (6) जल संरक्षण विधियों को लागू करना तथा भूजल का विवेकपूर्ण दोहन ताकि सूखा एवं अकाल की स्थिति में सिंचाई द्वारा फसलें उत्पादित की जा सकें।
- (7) जल भण्डारों का विकास

3.4.3 खनिज संसाधन उपयोग एवं दोहन

विश्व में किसी भी देश का आर्थिक विकास वहाँ पाये जाने वाले खनिजों की उपलब्धता एवं उपयोग पर निर्भर करता है। खनिजों की कमी होने पर पर्याप्त विकास नहीं हो पाता है तथा वह देश औद्योगिक उन्नति एवं विकास की दौड़ में पिछड़ जाता है। खनिजों के उपयोग से ही आज विभिन्न उपयोग की छोटी वस्तु से लेकर विशाल उद्योगों में काम आ रही बड़ी मशीनों का निर्माण सम्भव हो पाया है। प्रकृति में 2000 से अधिक खनिजों की खोज की जा चुकी है जिनमें से लगभग 200 खनिजों का वर्तमान में व्यावसायिक एवं औद्योगिक उपभोगों के लिये उत्पादन किया जा रहा है। खनिज जमावों के ज्ञात परिणाम को संचित भण्डार कहते हैं।

प्रकृति में खनिज निश्चित मात्रा में विद्यमान है क्योंकि खनिजों के निर्माण प्रक्रिया लम्बी है। खनिजों की उपलब्धता के बारे में कुक एवं शीथ ने कहा है कि, 'किसी भी खनिज के विश्व स्तर पर अभाव के कोई लक्षण नहीं है लेकिन प्रादेशिक स्तर पर अभाव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यदि किसी देश के पास खनिज पदार्थों के खुले बाजार में क्रय करने हेतु विदेशी मुद्रा की कमी हो।' वर्तमान औद्योगीकरण के युग में खनिजों की मांग निरन्तर बढ़ रही है जिसके लिये खनिजों का दोहन तीव्रता से किया जा रहा है। खनिजों के लगातार दोहन से एक ओर इनकी उपलब्धता में कमी आ रही है तो दूसरी ओर उनके खनन स्थलों में भूमि एवं वन संसाधनों का अवनयन हो रहा है।

3.4.4 खाद्य संसाधन

मानव प्रारम्भ में अपना भरण-पोषण प्रकृति से विभिन्न खाद्य वस्तुओं के संग्रह द्वारा करता था। आज से 10 हजार वर्ष पूर्व कृषि कार्य प्रारम्भ कर पृथ्वी पर उपलब्ध वस्तुओं में छॉट की प्रवृत्ति विकसित की तथा अपने उपयोग के पौधों का अधिकाधिक विकास किया व अनुपयोगी पौधों को जैविक चक्र से निकाल दिया गया। कालान्तर में संसाधनों के विशेषीकरण के चलते वनस्पति पशुओं एवं अन्य जीव-जन्तुओं के साथ ही कुछ खनिजों को भी खाद्य संसाधनों में सम्मिलित किया गया। वर्तमान में खाद्य पदार्थों का निम्नलिखित तीन प्रकार के संसाधनों से प्राप्त करते हैं-

(i) **वनस्पति** - खाद्य पदार्थों का बड़ा भाग वनस्पति उत्पादों से प्राप्त करते हैं। इसमें विभिन्न कृषि फसलों के अतिरिक्त फल, कन्दमूल, पतियाँ एवं खुम्बी आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(ii) **जीव-जन्तु** - जीव-जन्तुओं से हम विभिन्न खाद्य पदार्थ के प्रमुख तथा गौण रूप में मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन, मत्स्यपालन आदि से प्राप्त करते हैं।

(iii) **खनिज** - खाद्य पदार्थों के रूप में जल एवं चट्टानों से मिलने वाला नमक प्रमुख है।

इन सभी खाद्य पदार्थों में बड़ा भाग पृथ्वी पर की जा रही विभिन्न प्रकार की कृषि से प्राप्त किया जाता है। विगत शताब्दी में तीव्रता से बढ़ी जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति के लिये निरंतर कृषि क्षेत्र में भी वृद्धि की गई जिसके फलस्वरूप विभिन्न पर्यावरणीय समस्याएँ अद्भुत हुई हैं। आज विश्व के दो-तिहाई देश अपने संभाव्य कृषिगत क्षेत्र के 70 प्रतिशत भाग का उपयोग कर चुके हैं। भविष्य में बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण में सक्षम देश उष्णार्द्र पेट्री में स्थित है जबकि शीत एवं अयनवर्तीय या उपोष्ण प्रदेश अपनी संभाव्य खाद्यान्न उत्पादन क्षमता का पूर्ण दोहन कर चुके हैं।

विश्व

खाद्य

समस्या

पृथ्वी पर विगत शताब्दी में तीव्र गति से बढ़ी जनसंख्या ने खाद्य समस्या को जन्म दिया है क्योंकि उसी अनुपात में हम खाद्य सामग्री नहीं जुटा पाये हैं। कृषि का विकास भी हुआ लेकिन कृषि योग्य भूमि धीरे-धीरे सिमटती गई। सीमित कृषि क्षेत्र में भी प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ाया गया लेकिन इसके दुष्परिणाम शीघ्र ही पर्यावरण पर दृष्टिगत होने लगे। भूमि की उर्वरा शक्ति में कमी, वन क्षेत्रों में कमी, जल एवं मृदा प्रदूषण, सूखा, मरुस्थलीकरण आदि समस्याएँ शीघ्र ही उद्भूत हो गईं। कुछ प्रमुख देशों ने त्वरित कृषि विकास का लाभ लिया। फलस्वरूप विकासशील देशों में अपनी जनता के लिये खाद्यान्न आपूर्ति बनाये रखना कठिन हो गया।

बढ़ती जनसंख्या खाद्य समस्या का मूल कारण रही है। आज विश्व की जनसंख्या 613.7 करोड़ (2000) है, जो सन 2015 में 720.7 करोड़ तथा 2025 में 781 करोड़ हो जाएगी। इस आबादी के लिये पर्याप्त खाद्य सामग्री जुटाना विश्व की प्रमुख समस्या रहेगी, क्योंकि हमारे संसाधनों में भी निरन्तर गुणात्मक एवं मात्रात्मक अवनयन होता जा रहा है। जल की उपलब्धता में कमी एवं प्रदूषण, समुद्री संसाधनों में कमी, ऊर्जा संकट आदि सभी समस्या में सम्बद्ध समस्याएँ हैं। खाद्यान्नों के उत्पादन में मिलने वाली भिन्नता के कारण भी खाद्य पदार्थों की संतुलित मात्रा नहीं रहती है। विकासशील देशों में विश्व की 75 प्रतिशत जनसंख्या रहती है लेकिन वहाँ विश्व के कुल खाद्यान्न उत्पादन का एक-तिहाई ही पहुँच पाता है।

भारत में खाद्य समस्या प्रारम्भ से ही रही है जिसे आयात कर पूरा किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त प्रथम योजना में कृषि को प्राथमिकता क्रम में पहला स्थान दिया गया। तीसरी योजना में खाद्य संकट के कारण बड़े पैमाने पर खाद्यान्नों का आयात किया गया लेकिन इसके बाद नई कृषि युक्ति अपनाई गई जिसमें खाद्यान्नों के उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव रहा। फलस्वरूप चौथी योजना में खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई। धीरे-धीरे देश खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुआ लेकिन इसी दौरान एक ओर देश की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती चली गई तथा दूसरी ओर सूखे जैसी आपदाओं का सामना भी करना पड़ा।

हरित क्रान्ति के उपरान्त देश में बड़े पैमाने पर खाद्यान्नों का उत्पादन हुआ तथा भारतीय खाद्य निगम ने खाद्यान्नों की वसूली कर इस समस्या को हल करने का प्रयास किया। 1 जनवरी 2003 को भारतीय खाद्य निगम के पास 482 लाख टन खाद्यान्नों का भंडार था जो आवश्यकता से कहीं अधिक है। वर्तमान खाद्य उत्पादन संतोषजनक है लेकिन इसे प्राप्त करने के लिये हमने देश के सदियों से संतुलित चले आ रहे पर्यावरण का अवनयन कर दिया। आज देश में जल संकट बना हुआ है तथा मृदा अपरदन की समस्या उत्पन्न हो गई है। कृषि क्षेत्र बढ़ाने के लिये बड़े पैमाने पर वनावरण को साफ किया गया।

कृषि	विकास	के	पर्यावरणीय	प्रभाव
विश्व की बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति के लिये हमने निरन्तर कृषि विकास किया है। यह कृषि विकास दो रूपों में हुआ। प्रथम कृषि क्षेत्र में वृद्धि की तथा द्वितीय कृषि क्षेत्र में वृद्धि के साथ-साथ कृषि की गहनता में वृद्धि की जिसके अन्तर्गत प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ाया गया। कृषि क्षेत्र बढ़ने के साथ-साथ वन क्षेत्र में कमी आती गई तथा कृषि गहनता में वृद्धि के साथ जल की कमी आयी तथा मृदा उर्वरक में हास हुआ फलस्वरूप एक सीमा के बाद खाद्यान्नों के उत्पादन बढ़ने की अन्तिम वहन क्षमता आ गई। इस प्रकार मानव ने तीव्रता से कृषि क्रियाओं का विस्तार करके सर्वत्र पर्यावरण को हानि पहुँचाई है। कृषि गहनता को बढ़ाने के लिये उन्नत किस्मों के बीजों एवं उन्नत कृषि प्राविधिकी का उपयोग अपरिहार्य है। साथ ही रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग किये बिना कृषि गहनता असम्भव है जिसके फलस्वरूप पर्यावरण पर दुष्प्रभाव दृष्टिगत होते हैं।				

3.4.5	ऊर्जा	संसाधन
प्रकृति के पारिस्थितिकीय सन्तुलन में ऊर्जा की मुख्य भूमिका रहती है जो प्राकृतिक परिवेश के जैविक तथा अजैविक घटकों के मध्य अन्तःक्रिया बनाये रखती है। पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा द्वारा विभिन्न पोषण स्तरों में ऊर्जा का प्रवाह होता है तथा स्वनियामक प्रकृति बनी रहती है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग द्वारा पोषण स्तर एक स्वपोषी (प्राथमिक उत्पादक) पादप विकसित होकर भविष्य में ऊर्जा के विभिन्न रूपों में परिवर्तित होते हैं। उदाहरण के लिये कार्बोनिफेरस काल की प्राकृतिक वनस्पति ही आज हमें कोयले के रूप में मिलती है।		

वर्तमान में पृथ्वी पर हमें ऊर्जा विभिन्न रूपों में मिलती है जिनमें कहीं खनिज संसाधनों (कोयला, पेट्रोलियम प्राकृतिक गैस) से तो कहीं भौतिक क्रियाओं (ज्वार भाटा, पवन, सौर ऊर्जा) आदि से मिलती है। इसे मनुष्य अपने प्रोद्योगिकी ज्ञान द्वारा विभिन्न रूपों में विकसित कर

उत्पादित करता है। इस प्रकार के स्रोतों के आधार पर पृथ्वी पर निम्नलिखित रूपों में ऊर्जा की प्राप्ति होती है।

ऊर्जा **संसाधन** **ऊर्जा** **की** **बढ़ती** **आवश्यकता**
 ऊर्जा के उपयोग वर्तमान विकास के युग में प्रगति का परिचायक बना गया है। अतः ऊर्जा के अधिकतम उपयोग की प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप ऊर्जा संकट उत्पन्न हुआ है। विकास का आधार ऊर्जा उपभोग को माना जा रहा है। जिस देश में जितनी अधिक ऊर्जा की खपत होती है, उसे उतना ही अधिक विकसित माना जाता है। विश्व में सर्वाधिक ऊर्जा की खपत संयुक्त राज्य अमरीका में होती है। यहाँ विश्व की 33 प्रतिशत ऊर्जा की खपत होती है, जबकि भारत में केवल 1.5 प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग होता है। संसार में सबसे कम ऊर्जा की खपत नेपाल, बांग्लादेश तथा अफ्रीकी देशों में है। संसार में कुल ऊर्जा का 62 प्रतिशत जीवाश्मीय ईंधन का योगदान है। पेट्रोलियम उत्पाद तीव्र गति से घटते जा रहे हैं।

बढ़ती उपभोग दर के आधार पर अगले 30 वर्षों में पेट्रोलियम समाप्त हो जायेगा। कोयला आगामी 100 वर्षों में तथा प्राकृतिक गैस 50 वर्षों में समाप्त हो जायेंगे। जल शक्ति कुल ऊर्जा का 20 प्रतिशत योग देती है। पृथ्वी पर ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत सूर्य है, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा, जैव ऊर्जा, भूगर्भीय ताप ऊर्जा आदि ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोत हैं। बढ़ती ऊर्जा की माँग को मद्देनजर रखते हुए ऊर्जा के नये विकल्प स्रोतों की खोज के साथ ही ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों का विकास किया जाये जो वर्तमान विश्व की आवश्यकता है?

ऊर्जा **के** **वैकल्पिक** **स्रोत**
 गैर परम्परागत शक्ति के स्रोत ही मानव के प्रथम विकास में सहायक रहे हैं। इनमें कई शक्ति के स्रोत आज भी स्थानीय रूप से विद्युत का निर्माण करते हैं, इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं-

(i)	भूतापीय	शक्ति
(ii)	ज्वारीय	शक्ति
(iii)	पवन	ऊर्जा
(iv)	सौर्यिक	ऊर्जा

3.4.6 भूमि संसाधन अवनयन

भूमि प्रकृति एक आधारभूत संसाधन है जिस पर विभिन्न उत्पाद क्रियाएँ निर्भर करती हैं। भूमि संसाधन से प्राप्त उत्पादों के आधार पर ही आर्थिक व्यवस्था विकसित होती है। भूमि के अन्तर्गत हम केवल पर्वत, पठार एवं मैदानों को पर्यावरणीय दशाएँ एवं आवास प्रदान करती हैं। प्राकृतिक पर्यावरण अवनयन के रूप में जब मृदा अपरदन होने लगता है तो सम्पूर्ण उपरोक्त क्रियाएँ बाधित होकर पर्यावरण को अवक्रमित कर देती है। अपरदित क्षेत्र बंजर तथा कृषि के अयोग्य हो जाता है। साथ ही अधिक मृदा अपरदन से वनस्पति आवरण भी कम हो जाता है।

3.5 प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में मनुष्य का योगदान

वर्तमान समय में मनुष्य की आर्थिक नीतियों के कारण प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण उपयोग तथा तीव्र गति से अवशोषण के कारण मनुष्य के स्वयं के स्थापित के लिये खतरा उत्पन्न होता जा रहा है। वर्तमान में जिस गति से प्राकृतिक संसाधनों का अवशोषण हो रहा है यदि आगे भी इस गति से अवशोषण होता रहा तो मानवीय उन्नति तथा जीवन-यापन के लिये खतरा उत्पन्न हो जायेगा। इस समस्या का केवल एक ही उपाय है जो प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण है। संरक्षण के लिये मनुष्य को निम्नांकित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

- मनुष्य का शिक्षित एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है ताकि वह संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग कर सकें।
- उपलब्ध संसाधनों का उपयोग संतुलित अवस्था में किया जाए।
- स्थान विशेष में उपलब्ध संसाधनों का बहुउद्देशीय उपयोग किया जाना चाहिए जिसके द्वारा अल्प मात्रा में पाए जाने वाले संसाधनों से भी अधिकतम उपयोग प्राप्त की जा सके।
- प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के प्रति सर्वसाधारण में चेतना जागृत की जानी चाहिए। इसके लिये संचार माध्यम के साधनों का उपयोग किया जा सकता है।
- संसाधन संरक्षण हेतु स्थानीय स्तर या राष्ट्रीय स्तर पर योजना बनाकर नियमों का निर्माण किया जाए तथा उनका शक्ति से पालन करवाया जाए।
- बहुत कम मात्रा में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग केवल अनिवार्यता की स्थिति में ही किया जाए।
- अनुसंधान, खोज तथा नवीन तकनीकियों द्वारा नए संसाधनों का पता लगाया जाये।
- कम महत्वपूर्ण संसाधनों को नष्ट करने के बजाय उनका उचित एवं सही उपयोग करने के प्रयास किये जाएँ।

3.6 सारांश

संसाधनों का वर्गीकरण उपयोग की सततता, उत्पत्ति के आधार व उद्देश्य के आधार पर किया गया है। संसाधनों पर अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय व व्यक्तिगत स्वामित्व होता है। वनों का अतिदोहन के कारण जलवायु, मृदा अपरदन व जैव विविधता का हास हो रहा है। भूजल के स्रोत आकाशी, सहजात जल एवं मैग्मा जल है। जल का उपयोग सिंचाई, उद्योगों, घरेलू कार्यों, नौ परिवहन, नहरों व जल विद्युत में हो रहा है।

3.8 संदर्भ सामग्री

1. जलग्रहण मार्गदर्शिका - संरक्षण एवं उत्पादन विधियों हेतु दिशा निर्देश - जलग्रहण विकास एवं भू-संरक्षण विभाग द्वारा जारी
2. जलग्रहण विकास हेतु तकनीकी मैनुअल - जलग्रहण विकास एवं भू-संरक्षण विभाग द्वारा जारी
3. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी राष्ट्रीय जलग्रहण विकास परियोजना के लिये जलग्रहण विकास पर तकनीकी मैनुअल
4. वाटरशेड मैनेजमेंट - श्री वी.वी. धुवनारायण, श्री जी. शास्त्री, श्री वी. एस. पटनायक
5. ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी जलग्रहण विकास - दिशा निर्देशिका
6. ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी जलग्रहण विकास - हरियाली मार्गदर्शिका
7. Compendium of Circulars जलग्रहण विकास एवं भू-संरक्षण विभाग द्वारा जारी

8. विभिन्न परिपत्र - राज्य सरकार 7 जलग्रहण विकास एवं भू-संरक्षण विभाग
 9. Environmental Studies डॉ. के. के. सक्सेना
 10. पर्यावरण अध्ययन - डॉ. राजकुमार गुर्जर, डॉ. बी.सी. जाट
 11. A Text book of Environmental Education डॉ. जेपीयादव
 12. कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा जारी वरसा जन सहभागिता मार्गदर्शिका

<p>जलग्रहण विकास - सिद्धांत एवं रणनीति, अप्रैल 2010 (इस पुस्तक के अन्य अध्यायों को पढ़ने के लिये कृपया आलेख के लिंक पर क्लिक करें।)</p>	
1	जलग्रहण विकास-सिद्धांत एवं रणनीति
2	मिट्टी एवं जल संरक्षण: परिभाषा, महत्व एवं समस्याएँ उपचार के विकल्प
3	प्राकृतिक संसाधन विकास: वर्तमान स्थिति, बढ़ती जनसंख्या एवं सम्बद्ध समस्याएँ
4	जलग्रहण प्रबंधन हेतु भूमि उपयोग वर्गीकरण
5	जलग्रहण विकास: क्या, क्यों, कैसे, पद्धति एवं परिणाम
6	जलग्रहण विकास में जनभागीदारी:समूहगत विकास
7	जलग्रहण विकास में संस्थागत व्यवस्थाएँ:समूहों, संस्थाओं का गठन एवं स्थानीय नेतृत्व की पहचान
8	जलग्रहण विकास: दक्षता, वृद्धि, प्रशिक्षण एवं सामुदायिक संगठन
9	जलग्रहण प्रबंधन: सतत विकास एवं समग्र विकास, अवधारणा, महत्व एवं सिद्धांत
10	पर्यावरण:सामाजिक मुद्दे, समस्याएँ, संघृत विकास
11	राजस्थान में जलग्रहण विकास: चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ